जीव की दस संज्ञाएं

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जीव या आत्मा मूल रूप से एक ही है। जहां चेतना है वहां आत्मा है। जहां अचेतना है वह जड़ता है। जीव या आत्मा के अनेक नाम है। आत्मा शरीर प्रमाण है। आत्मा कर्ता भोक्ता है। मन, वचन, काया की प्रवृत्ति से पुद्गल आत्मा की तरफ आकर्षित होते हैं और आत्मा को मलीन बना देते हैं। आत्मा के करण ही शरीर में चेतनता रहती है। जीव के निकलते ही शरीर मृत प्राय हो जाता है। एकन्द्रिय जीव से लेकर पंचेन्द्रिय जीव आत्मा के कारण ही चेतन कहलाते हैं। सभी प्राणियों में मानव ही सबसे अधिक विकसित प्राणी है। कर्म शरीर और आत्मा एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं। यह जुड़ाव कर्मों का बंधन है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीवों की दस संज्ञाएं हैं– आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा, क्रोध संज्ञा, मान संज्ञा, माया संज्ञा, लोभ संज्ञा, लोक संज्ञा और ओघ संज्ञा। संज्ञा की दृष्टि से जीव वेद कहलाता है। इसके अतिरिक्त तीन संज्ञाएं और हैं– हेतुवादोपदेशिकी, दीर्घकालिकी और सम्यक् दृष्टि। ये तीनों संज्ञाएं ज्ञानात्मक है।

संज्ञा का स्वरूप समझने से पहले कर्म का कार्य समझना आवश्यक है। संज्ञाएं आत्मा और मन की प्रवृत्तियां हैं। वे कर्म द्वारा प्रभावित होती हैं। कर्म आठ हैं। इसके मोह प्रधान है। इसके दो कार्य हैं– तत्व दृष्टि या श्रद्धा को विपरित करना और चरित्र को विकृत करना। दृष्टि को विकृत बनाने वाला पुद्गल दृष्टि मोह और चरित्र को विकृत बनाने वाला पुद्गल चारित्र मोह कहलाता है। चारित्र मोह के द्वारा प्राणी में अनेक मनोवृत्तियां बनती हैं, जैसे भय, घृणा, हंसी, सुख, संग्रह, कामना, भोगाशति, यौन सम्बन्ध आदि।

मानव की तीन एष्णाएं हैं– मैं जीवित रहूं, धन दौलत की वृद्धि हो, परिवार बढ़े, सुख की इच्छा, किसी वस्तु के प्रति राग–द्वेष और नया काम करने की भावना। ये सभी चारित्र मोह द्वारा पुष्ट होते हैं। चारित्र मोह परिस्थितियों द्वारा उत्तेजित हो अथवा परिस्थितियों से उत्तेजित

हुए बिना ही प्राणियों में अंतःक्षोभ पैदा करता है, जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ आदि। मोह के अतिरिक्त शेष कर्म आत्म शक्तियों को आवृत्त करते हैं, विकृत नहीं।

खाने की आसक्ति वेदनीय और मोहनीय कर्म से उत्पन्न होती है। यह मूल कारण है इसको उत्तेजित करने वाले तीन गौण कारण और हैं– रिक्त कोष्ठता, आहार के दर्शन आदि से उत्पन्न मति और आहार सम्बन्धी चिंतन। भय की वृत्ति मोह कर्म के उदय से बनती है। भय की उत्तेजना के तीन कारण हैं– हीन सत्वता, भय दर्शन से उत्पन्न मति और भय सम्बन्धी चिंतन। मैथुन की वृत्ति मोह कर्म के उदय से बनती हैं। मैथुन की उत्तेजना मांस और रक्त का उपचय, मैथुन सम्बन्धी चर्चा का श्रवण और मैथुन सम्बन्धी चिंतन से अधिक बढ़ती है। परिग्रह की वृत्ति मोह कार्य के उदय से होती है। परिग्रह की उत्तेजना अविमुक्तता, परिग्रह सम्बन्धी चर्चा का श्रवण और परिग्रह सम्बन्धी चिंतन से बढ़ती है। इसी प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभ ये सभी वृत्तियां मोह से बनती है। वीतराग आत्मा में ये वृत्तियां नहीं होती। ये आत्मा के सहज गुण नहीं किन्तु मोह के योग से हाने वाले विकार हैं। ओघ संज्ञा अनुकरण की प्रवृत्ति अथवा अव्यक्त चेतना या सामान्य उपयोग जैसे लताएं वृक्ष पर चढ़ती हैं। यह ज्ञान होना ओघ संज्ञा है। लौकिक कल्पनाएं अथवा व्यक्त चेतना का विशेष उपयोग लोग संज्ञा है। ये सभी संज्ञाएं एकेन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों तक होती हैं। कषाय इनके मूल में होता है।

आत्मा को रंगने वाली वृत्तियां क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय है। इसका तीव्र आवेग होता है। इसकी उत्पत्ति सहेतुक और निर्हेतुक दोनों प्रकार की होती है। जो व्यक्ति प्रिय वस्तु का वियोग किया, करता है या करने वाला है उसे देख क्रोध उभर आता है। यह सहेतुक क्रोध है। किसी बाहरी निमित के बिना केवल क्रोध वेदनीय पुद्गलों के प्रभाव से क्रोध उत्पन्न होता है तो वह निर्हेतुक है। कषाय को उत्तेजित करने वाली वृत्तियां हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, ग्रहणा, स्त्री वेद, पुरूष वेद और नपुंसक वेद होते हैं। कई आवेग संज्ञा में वर्गीकृत हैं और कई अवर्गीकृत हैं। इनमें से हास्य आदि की उत्पत्ति सकारण और अकारण दोनों प्रकार की होती है। एक समय में एक ज्ञान और एक संवेदन होता है। समय की सूक्ष्मता से भिन्न–भिन्न संवेदनों के क्रम का ज्ञान नहीं हो पाता।

चेतना दो प्रकार की होती है। साकार और अनाकार वस्तु मात्र को जानने वाली चेतना अनाकार और उसकी विविध परिणतियों को जानने वाली चेतना साकार होती है। चेतना के ये दो रूप उसके स्वभाव की दृष्टि से नहीं किन्तु विषय ग्रहण की दृष्टि से बनते हैं। अनावृत चेतना व्यक्त होती है। आवृत चेतना दोनों प्रकार की होती है। मन रहित इन्द्रिय ज्ञान अव्यक्त होता है और मानस ज्ञान व्यक्त सुप्त, मूर्छित आदि दशाओं में मन का ज्ञान भी अव्यक्त होता है। अव्यक्त चेतना को अध्यवसाय परिणाम आदि कहा जाता है। व्यक्त मन के बिना भी प्राणियों में सम्मुख आना, वापस लौटना, सिकुड़ना, बोलना, फैलना, करना और दौड़ना आदि प्रवृत्तियां होती हैं। गर्भज पंचेन्द्रि जीवों में दीर्घकाल की संज्ञा या मन होता है। वे त्रैकालिक और आलोचनात्मक विचार कर सकते हैं। सत्य की श्रद्धा रखने वालों में सम्यक् दृष्टि संज्ञा होती है। मानसिक ज्ञान का यथार्थ और पूर्ण विकास इन्हीं में होता है। इस प्रकार संज्ञाएं जीव से सम्बन्धित हैं।